JAIN REFERENCE LIBRARY ACHARYA SURENDRASURI JAIN TATVA GYANSHALA Page 1/2

ओही जस्स सो अणंतोही। × × × अधवाऽवयव-विणासाणं वाचओ अंतसद्दो घेत्तव्वो, ओही मज्जाया उक्कस्साणंतादो पुधभूदा। अन्तश्च अवधिश्च अन्तावधी, न विद्येते तौ यस्य स अनन्तावधिः। अभेदाज्जीवस्यापीयं संज्ञा। अनन्तावधयश्च ते जिनाश्च अनन्तावधिजिनाः। (धव. पु. ६, पृ. ५१-५२)। **जिस ज्ञान की अवधि (मर्यादा) उत्कृष्ट अनन्त है, अर्थात् जो ज्ञान अनन्त वस्तुओं को विषय करता है, वह अनन्तावधि कहलाता है; ऐसा ज्ञान जिन जिनों के—कर्मविजेताओं के—होता है उन्हें अनन्तावधिजिन जानना चाहिए।**

अनन्तावबोध—अतीतानागत-वर्तमानाऽनन्तार्थ-व्यंजनपर्यायात्मकसूक्ष्मान्तरित-दूरार्थेषु अनन्तेषु अप्रतिबद्धप्रवृत्तिरमलः केवलाख्योऽनन्तावबोधः। (लघुस. सि. पृ. ११६)।

त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्यों की अनन्त अर्थपर्यायों और व्यंजनपर्यायों को, तथा सूक्ष्म, अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थों को निर्बाधरूप से जानने वाला निर्मल केवलज्ञान अनन्तावबोध कहलाता है।

अनन्तोपभोग—१. निरवशेषस्योपभोगान्तरायस्य प्रलयात् प्रादुर्भूतोऽनन्त उपभोगः क्षायिकः। (स. सि. २-४)। २. निरवशेषोपभोगान्तरायप्रलयादनन्तोपभोगः क्षायिकः। (त. वा. २, ४, ५)।

उपभोगान्तराय के निर्मूल विनष्ट हो जाने पर जो उपभोग प्रादुर्भूत होता है उसका नाम अनन्तोपभोग है।

अनपनीतत्व—अनपनीतत्वं कारक-काल-वचन-लिङ्गादिव्यत्ययरूपवचनदोषापेतता। (समवा. अभय. वृ. ३५; रायप. मलय. वृ. पृ. १७)।

कारक, काल, वचन और लिंग आदि के व्यत्ययरूप वचनदोष से रहित वाक्यप्रयोग को अनपनीतत्व कहते हैं।

अनपवर्तन—अनपवर्तनं यथावस्थितिकं पुरा बद्धं तस्य तावत्स्थितिकस्यैवानुभवनम्। (संग्रहणी वृ. २५६)।

पूर्व में बांधी हुई कर्मस्थिति का ह्रास न होकर उतनी ही स्थितिरूप कर्म का अनुभवन करने को अनपवर्तन कहते हैं।

अनपवर्तनीय—अनपवर्तनीयं पुनस्तावत्कालस्थित्येव, न ह्रासमायाति स्वकालावधेरारात्। × × × एवं हि तीव्रपरिणामप्रयोगबीजजनितशक्ति तदायुरात्तमतीतजन्मनि न शक्यमन्तराल एवावच्छेत्तुमित्यनपवर्तनीयमुच्यते। (त. भा. सिद्ध. वृ. २-५१)।

आयु कर्म की जितनी स्थिति बांधी गई है उतनी ही स्थिति का वेदन करना व अपने काल की अवधि के पूर्व उसका विघात नहीं होना, इसका नाम उसकी अनपवर्तनीयता है। अभिप्राय यह है कि अनपवर्तनीय आयु वह कही जाती है जिसका विघात पूर्व जन्म में बांधी गई स्थिति के पूर्व किसी भी प्रकार से न हो सके।

अनभि(धि)गतचारित्रार्य—अन्तश्चारित्रमोहक्षयोपशमसद्भावे सति बाह्योपदेशनिमित्तविरतिपरिणामा अनभि(धि)गतचारित्रार्याः। (त. वा. ३, ३६, २)।

अन्तरंग में चारित्रमोहनीय कर्म का क्षयोपशम होने पर और बहिरंग में गुरु के उपदेशादि का निमित्त मिलने पर जो चारित्र रूप परिणाम से युक्त हुए हैं उन्हें अनभिगतचारित्रार्य कहते हैं।

अनभिगृहीत मिथ्यात्व—१. न अभिगृहीतम् अनभिगृहीतम्, यथैक-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियैर्भद्रकैश्च। (पंचसं. स्वो. वृ. ४-२)। २. परोपदेशं विनापि मिथ्यात्वोदयादुपजायते यदश्रद्धानं तदनभिगृहीतं मिथ्यात्वम्। (भ. आ. विजयो. टी. ५६)। ३. अनभिगृहीतं परोपदेशं विनापि मिथ्यात्वोदयाज्जातम्। भ. आ. मूला. टी. ५६)।

२ परोपदेश के बिना ही मिथ्यात्व कर्म के उदय से जो तत्त्वों का अश्रद्धान उत्पन्न होता है, उसे अनभिगृहीत मिथ्यात्व कहते हैं।

अनभिगृहीता क्रिया — अनभिगृहीताऽनभ्युपगतदेवताविशेषाणां तत्त्वार्थश्रद्धानम्। (त. भा. सिद्ध. वृ. ६-६)।

देवताविशेष को स्वीकार न करने वालों के तत्त्वार्थश्रद्धान को—विपरीत तत्त्वश्रद्धा को—अनभिगृहीता क्रिया कहते हैं।

अनभिगृहीता दृष्टि—सर्वप्रवचनेष्वेव साधुदृष्टिरनभिगृहीतमिथ्यादृष्टिः। सर्वमेव युक्त्युपपन्नमयु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Mo. 9512234311 www.jainreferencelibrary.org jaintatvagyanshala@gmail.com

JAIN REFERENCE LIBRARY ACHARYA SURENDRASURI JAIN TATVA GYANSHALA Page 2/2

क्तिकं वा समतया मन्यते मौढ्यात् । (त. भा. सि. वृ. ७–१८) ।

जो सभी मत-मतान्तरों को समीचीन मानता हुआ सयुक्तिक व युक्तिशून्य कथन को मूर्खतावश समान मानता है, उसकी दृष्टि (श्रद्धा) को अनभिगृहीता दृष्टि कहा जाता है ।

अनभिगृहीता भाषा—१. अनभिगृहीता भाषा अर्थमनभिगृह्य या प्रोच्यते डित्थादिवदिति । (दशवै. हरि. वृ. नि. ७–२७७); आव. हरि. वृ. म. हे. टि. पृ. ७६) । २. सा होइ अणभिगहिया जत्थ अणेगेसु पुट्ठकज्जेसु । एगयराणवहारणमहवा दिच्छाइयं वयणं । (भाषार. ७७); यत्र यस्यां अनेकेषु पृष्टकार्येषु मध्य एकतरस्यानवधारणमनिश्चयो भवति—एतावत्सु कार्येषु मध्ये किं करोमीति प्रश्नयेत् प्रतिभासते, तत्कुर्वति प्रतिवचने कस्यापि शृङ्गग्राहिकयाऽनिर्धारणात् सा ऽनभिगृहीता भवति । (भाषार.टी. ७७) ।

१ अर्थ को नहीं ग्रहण करके बोली गई भाषा—जैसे डित्थ-डवित्थादि–को अनभिगृहीता भाषा कहते हैं । २ अथवा एक साथ पूछे गये अनेक कार्यों में से किसी एक का भी निश्चय न करके उत्तर देने को अनभिगृहीता भाषा कहते हैं ।

अनभिग्रहा भाषा—अनभिग्रहा यत्र न प्रतिनियतार्थविधारणम् । (प्रज्ञाप. मलय. वृ. ११–१६५) ।

प्रतिनियत अर्थ के निश्चय से रहित भाषा को अनभिग्रहा भाषा कहते हैं ।

अनभिप्रेत (अणभिपेअ)—× × × अणभिप्पेओ अ पडिलोमो ।। (उत्तरा. नि. १–४३) ।

अपने लिए अनिष्ट या प्रतिकूल वस्तु को अनभिप्रेत कहते हैं ।

अनभियोग्य देव—तेभ्यो (अभियोगेभ्यो)ऽन्ये किल्विषिकादयोऽनुत्तमा देवा उत्तमाश्च पारिषदादयोऽनभियोग्याः । (जयध. पत्र ७६४) ।

अभियोग्य देवों के अतिरिक्त जो किल्विषिक आदि अधम और पारिषद आदि उत्तम जाति के देव हैं वे अनभियोग्य देव कहलाते हैं ।

अनभिसन्धिजवीर्य (अणभिसंधिजवीरिय)—१. असंवेइया खल-रसातिपरिणामणा सत्ती अणभिसंधिजं वीरियं । (कर्मप्र. चू. गा. १–३) । २. इतरदनभिसन्धिजम्—यद् भुक्तस्याहारस्य धातु-मलत्वरूपपरिणामापादनकारणमेकेन्द्रियाणां वा तत्तत्क्रियानिबन्धनम् । (कर्मप्र. मलय. वृ. १–३, पृ. २०) ।

२ उपभुक्त आहार को सप्त धातु और मल-मूत्रादि रूप परिणमाने वाली शक्ति को अनभिसन्धिज वीर्य कहते हैं । अथवा, जो एकेन्द्रिय जीवों की विविध क्रिया का कारण हो उसे अनभिसन्धिज वीर्य समझना चाहिए ।

अनभिहित—अनभिहितं स्वसिद्धान्तेऽनुपदिष्टम् । (आव. मलय. वृ. नि. ८८२) ।

अपने सिद्धान्त में अनुपदिष्ट या अकथित तत्त्व को अनभिहित कहते हैं ।

अनर्थक्रिया—१. तद्विपरीता (अर्थदण्डरूपार्थक्रियाविपरीता) अनर्थक्रिया । (गु. गु. षट्. स्वो. वृ. पृ. ४१) । २. तदर्थाभावे तद्ग्रहणमनर्थाय क्रिया । (धर्मसं. मान. स्वो. वृ. ३, २७, ८२) ।

प्रयोजन रहित क्रिया को अनर्थक्रिया कहते हैं ।

अनर्थदण्ड—१. कज्जं किं पि ण साहदि णिच्चं पावं करेदि जो अत्थो । सो खलु हवे अणत्थो × × ×।। (कार्तिके. ३४३) । २. उपकारात्यये पापादाननिमित्तमनर्थदण्डः । (त. वा. ७, २१, ४; त. श्लो. ७–२१) । ३. तद्विपरीतोऽनर्थदण्डः प्रयोजननिरपेक्षः, अनर्थः अप्रयोजनमनुपयोगो निष्कारणतेति पर्यायाः । विनैव कारणेन भूतानि दण्डयति, तथा कुठारेण प्रहृष्टस्तरुस्कन्ध-शाखादिषु प्रहरति, कुक्कलास-पिपीलिकादीन् व्यापादयति कृतसङ्कल्पः, न च तद्व्यापादने किञ्चिदतिशयोपकारि प्रयोजनं येन विना गार्हस्थ्यं प्रतिपालयितुं न शक्यते । (आव. हरि. वृ. ६, ८३; त. भा. सि. वृ. ७–१६) । ४. प्रयोजनं विना पापादानहेतुरनर्थदण्डः । (चा. सा. पृ. ६) । ५. शरीराद्यर्थविकलो यो दण्डः क्रियते जनैः सोऽनर्थदण्डः । (धर्मसं. मान. स्वो. वृ. २, ३५, ८१) ।

१ जिस अर्थ से—क्रिया से—कार्य तो कुछ भी सिद्ध नहीं होता, किन्तु सदा पाप ही किया जाता है वह अनर्थदण्ड कहलाता है ।

अनर्थदण्डविरति—१. अभ्यन्तरं दिगवधेरपार्थिकेभ्यः सपापयोगेभ्यः । विरमणमनर्थदण्डव्रतं विदुर्व्रतधराग्र्याः ।। (रत्नक. ३–२८) । २. असत्युपकारे पापादानहेतुरनर्थदण्डः, ततो विरतिरनर्थदण्डविरतिः । (स. सि. ७–२१) । ३. उपकारात्यये पापादाननिमित्तमनर्थदण्डः ।।४।। असत्युपकारे पापा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Mo. 9512234311 www.jainreferencelibrary.org jaintatvagyanshala@gmail.com